एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 06, अंक: 01 (जनवरी-फरवरी, 2026)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

# फालसा की खेती

*हंस राज वर्मा[1], कविता देवी[1], फुरबा दोलमा शेरपा[2] एवं सविता कुमारी[2]
[1]फल विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तरप्रदेश
[2]फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या
*संवादी लेखक का ईमेल पता: hansrajsr996@gmail.com

फालसा भारतीय उपमहाद्वीप तथा दक्षिण-पूर्व एशिया जैसे नेपाल, कंबोडिया, लाओस और थाईलैंड का मूल फल है। अपार संभावनाएँ होने के बावजूद इसे अब भी एक कम उपयोग में आने वाली उपोष्णकटिबंधीय फल फसल माना जाता है। फालसा को *इंडियन शरबत बेरी* भी कहा जाता है और यह मालवेसी (टिलिएसी) कुल से संबंधित पौधा है, जो अपने औषधीय महत्व और ताजगी देने वाले रस के लिए प्रसिद्ध है। इसका पौधा झाड़ीदार होता है तथा इसमें छोटे आकार के खट्टे-मीठे फल लगते हैं।

फालसा के फल जैव सक्रिय तत्वों और मेटाबोलाइट्स जैसे एंथोसाइनिन, टैनिन, पॉलीफिनॉल, फ्लेवोनॉयड, प्रोटीन, अमीनो अम्ल, एंथ्राक्विनोन, सैपोनिन तथा क्यूमारिन का अच्छा स्रोत होते हैं। पूर्णतः पके फल सीधे खाने के साथ-साथ शरबत, मिठाइयों और विभिन्न पेय पदार्थों के निर्माण में उपयोग किए जाते हैं। इनमें शीतल एवं स्फूर्तिदायक गुण पाए जाते हैं, जो गर्मी में प्यास बुझाकर शरीर को ठंडक प्रदान करते हैं। अधपके फलों में सूजनरोधी गुण होते हैं और इन्हें श्वसन व हृदय संबंधी रोगों, रक्त विकारों, गले के संक्रमण तथा बुखार के उपचार में प्रयोग किया जाता है। फालसा एक सहनशील फसल है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि कर सकती है तथा विभिन्न प्रकार की जलवायु और मिट्टी में उगाई जा सकती है।

हालाँकि पोषण, औषधीय और आर्थिक दृष्टि से यह अत्यंत उपयोगी है, फिर भी इसकी व्यावसायिक खेती अभी सीमित क्षेत्रों तक ही सिमटी हुई है। इसका प्रमुख कारण असमान फल पकना, बार-बार तुड़ाई की आवश्यकता, अत्यधिक नाशवान प्रकृति के कारण कम भंडारण अवधि, फलों का छोटा आकार तथा उचित विपणन और आपूर्ति प्रणाली का अभाव है।

**मृदा और जलवायु**

फालसा विभिन्न प्रकार की अच्छी जल-निकासी वाली मिट्टियों जैसे रेतीली, चिकनी एवं चूना-युक्त मिट्टी में उगाया जा सकता है, किंतु उपजाऊ दोमट मिट्टी में इसकी वृद्धि और उत्पादन सबसे बेहतर होता है। वर्षा ऋतु में खेत में जलभराव या पानी का ठहराव पौधों के लिए हानिकारक सिद्ध होता है, जिससे पत्तियों में पीलापन दिखाई देने लगता है। फालसा के लिए मिट्टी का उपयुक्त pH मान लगभग 7.5 से 8.5 के बीच माना जाता है। यह फसल देश के अधिकांश भागों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, केवल अत्यधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों को छोड़कर। फालसा पौधा

अल्पकाल के लिए 44°C तक का अधिक तापमान तथा लगभग 3°C तक का निम्न तापमान सहन कर सकता है। यह लगभग 914 मीटर की ऊँचाई तक अच्छी तरह विकसित होता है और हल्की ठंड को भी सहन करने की क्षमता रखता है। जिन क्षेत्रों में सर्दी नहीं पड़ती वहाँ पौधा अपनी पत्तियाँ नहीं गिराता तथा एक से अधिक बार पुष्पन करता है, किंतु ऐसे फलों की गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम होती है। इसी कारण उत्तर भारत में फालसा पर्णपाती झाड़ी के रूप में पाया जाता है, जबकि दक्षिण भारत में यह सदैव हरित रहता है। फालसा को सूखा-सहनशील फसल माना जाता है और यह शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, परंतु लाभकारी व्यावसायिक उत्पादन हेतु समय-समय पर सिंचाई आवश्यक होती है। पुष्पन काल के दौरान वर्षा फल स्थापन और कुल उपज को प्रभावित करती है।

**वनस्पति**

**बाहरी संरचना**

फालसा एक स्व-परागित तथा स्व-संगत फसल है, जिसकी गुणसूत्र संख्या 2n = 18 होती है। यह सामान्यतः झाड़ी या छोटे पर्णपाती वृक्ष के रूप में बढ़ता है और बिना छंटाई के इसकी ऊँचाई 10 मीटर से अधिक हो सकती है। व्यावसायिक उत्पादन में इसे झाड़ी स्वरूप में रखा जाता है, जहाँ प्रत्येक वर्ष तीव्र छंटाई कर पौधे की ऊँचाई लगभग 1 मीटर तक सीमित कर दी जाती है। यह प्रक्रिया नई कोपलों के विकास को बढ़ावा देती है तथा उत्तम गुणवत्ता वाले फलों की प्राप्ति में सहायक होती है, जबकि अत्यधिक छंटाई से फलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसकी शाखाएँ लंबी, पतली और झुकी हुई होती हैं तथा युवा तना और शाखाएँ घने रोयों से आच्छादित रहती हैं। इसके पुष्प प्रायः द्विलिंगी होते हैं और चमकीले नारंगी-पीले रंग के फूल पत्तियों की कांख में गुच्छों के रूप में निकलते हैं। प्रत्येक पुष्प में 4–5 पंखुड़ियाँ, दलपुंज, लगभग 70–80 स्वतंत्र पुंकेसर तथा एक विकसित स्त्रीकेसर पाया जाता है। फल परिपक्व अवस्था में गहरे लाल या चेरी-लाल रंग के हो जाते हैं। ये ड्रूप प्रकार के, अस्पष्ट रूप से खंडित, 1–2 बीज युक्त, गोलाकार तथा मटर के समान आकार के होते हैं और स्वाद में हल्के कसैले होते हैं। प्रत्येक फल का व्यास लगभग 1.0–1.9 सेमी, ऊँचाई 0.8–1.6 सेमी तथा भार 0.5–2.2 ग्राम के मध्य पाया जाता है।

**पुष्पन का प्रकार**

फालसा में फूल वर्तमान मौसम की नई वृद्धि के साथ पत्तियों की कांख में बनते हैं। फूल आमतौर पर फरवरी से मार्च के बीच शुरू होकर मई तक रहते हैं। उत्तर भारतीय परिस्थितियों में, फूल मार्च के मध्य से शुरू होकर अप्रैल के अंत तक पूरे होते हैं, जिसमें अप्रैल के मध्य का समय चरम फूलने का माना जाता है। फल का स्थापन अप्रैल के पहले सप्ताह से मई के पहले सप्ताह तक होता है, जबकि अप्रैल के दूसरे और तीसरे सप्ताह में सबसे अधिक फल लगते हैं। फूल एक्रोपेटल प्रणाली से खिलते हैं, और मुख्य तथा पार्श्व शाखाओं की शीर्ष वृद्धि लगातार जारी रहती है। इस कारण, शीर्ष पर नई फूलों की कलियाँ निरंतर निकलती रहती हैं, जिससे पौधों में फलन में असमानता अधिक देखी जाती है। एंथेसिस (फूल का खिलना) प्रातः लगभग 9:00 बजे शुरू होकर दोपहर 2:00 बजे तक चलता है। प्रारंभिक अवस्था में, पूरे फूल की कलियों के आधार पर दलपुंज में दरारें बनती हैं। जैसे-जैसे ये दरारें बढ़ती हैं, एक-एक कर दलपुंज गिरने लगते हैं और लगभग आधे घंटे में फूल पूरी तरह खुल जाता है। इस समय परागकोष का विस्फोट भी फूल के पूरी तरह खुलने से पहले ही हो जाता है। बौने प्रकारों में, एंथेसिस और डिहिसेंस (पत्तियों का गिरना) अपेक्षाकृत जल्दी हो जाते हैं। फूल आने के लगभग 40–45 दिनों बाद फलों का पकना शुरू हो जाता है।

**फालसा का प्रवर्धन**

**लैंगिक प्रवर्धन**

फालसा का प्रवर्धन प्रायः बीजों द्वारा किया जाता है। बीज से विकसित पौधे सामान्यतः मातृ पौधे के गुणों से मिलते-जुलते होते हैं। सामान्य दशाओं में बीजों की जीवनीयता लगभग 90–100 दिनों तक बनी रहती है, जबकि शीत भंडारण में यह अवधि बढ़कर 175–185 दिनों तक हो जाती है। बेहतर अंकुरण के लिए मई के अंत या जून के प्रारंभ में पूर्णतः पके, बड़े आकार के, बैंगनी-काले रंग के फलों से प्राप्त ताजे बीजों का उपयोग करना चाहिए। बीजों की बुवाई 4–5 सेमी की दूरी पर तथा 1.5–2.0 सेमी गहराई में की जाती है। शीघ्र अंकुरण हेतु बीजों को सीधा बोया जाता है। नर्सरी की क्यारियाँ अच्छी तरह तैयार की जाती हैं और पंक्तियों के बीच 10–15 सेमी का अंतर रखा जाता है। बीजों

को हल्की मिट्टी या रेत से ढक दिया जाता है, जिसमें सूखी एवं सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाई जाती है। सामान्यतः बीज 15–20 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं। लगभग 7–8 महीने आयु के पौधे खेत में रोपाई के लिए उपयुक्त होते हैं। रोपण अगली शीत ऋतु (जनवरी–फरवरी) में किया जाता है। नर्सरी क्यारियों में नियमित सिंचाई आवश्यक है तथा उन्हें खरपतवार और रोगों से मुक्त रखना चाहिए।

**फालसा का वनस्पतिक प्रवर्धन**

फालसा का प्रवर्धन कठोर लकड़ी की कलमों तथा लेयरिंग विधि द्वारा भी किया जा सकता है। हालांकि फालसा की तनों से तैयार कलमों में जड़ बनने की क्षमता सामान्यतः कम पाई जाती है। इसी कारण जड़ निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए पौध वृद्धि नियामकों जैसे IAA (इंडोल एसीटिक एसिड), IBA (इंडोल ब्यूटिरिक एसिड) तथा NAA (नेफ्थलीन एसीटिक एसिड) का बाह्य प्रयोग किया जाता है, जिससे शीघ्र एवं अधिक संख्या में जड़ों का विकास हो सके। कलमें सामान्यतः दिसंबर–जनवरी माह में तैयार की जाती हैं तथा रोपण से पूर्व कुछ समय के लिए कैलसिंग (घाव भरने की प्रक्रिया) हेतु रखा जाता है, जिससे बाद में जड़ बनने की संभावना बढ़ जाती है।

**फालसा की किस्में**

कुछ वैज्ञानिकों ने फालसा के जीनोटाइपों को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा है—स्थानीय अथवा शरबती प्रकार तथा बौना या ऊँचा प्रकार। इनमें बौनी किस्मों को अधिक उत्पादन देने वाला माना जाता है और इन्हें प्रायः खेती के लिए प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि इनमें कुल शर्करा एवं गैर-अपचायक शर्करा की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत ऊँचे प्रकारों में अपचायक शर्करा की मात्रा अधिक होती है। हाल ही में विकसित एक किस्म 'थार प्रगति' को केंद्रीय उद्यानिकी प्रयोग स्टेशन, गुजरात में विकसित किया गया तथा वर्ष 2016 में ICAR–केंद्रीय शुष्क उद्यानिकी संस्थान, बीकानेर द्वारा जारी किया गया। यह फैलावदार प्रवृत्ति वाली तथा नियमित फल देने वाली किस्म है, जो रोपण के अगले ही वर्ष से पुष्पन प्रारंभ कर देती है। इसके फल अप्रैल के दूसरे सप्ताह में परिपक्व होते हैं। इनका औसत भार लगभग 2.10 ग्राम, गूदा प्रतिशत 90.45 तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (TSS) लगभग 20.12° ब्रिक्स पाया गया है। अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में वर्षा आधारित दशाओं के अंतर्गत इसकी उपज लगभग 3.60 किग्रा प्रति पौधा दर्ज की गई है।

**खेती**

**रोपण**

फालसा की रोपाई अथवा जड़युक्त कलमों के प्रत्यारोपण से पूर्व खेत को भली-भांति तैयार किया जाता है। इसके लिए 60 × 60 × 60 सेमी आकार के गड्ढे खोदकर उनमें ऊपरी मिट्टी तथा सड़ी हुई खाद भर दी जाती है। फालसा के पौधे जनवरी–फरवरी में सुप्त अवस्था में रहते हैं, इसलिए यही समय रोपण के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। इस अवधि में पौधों को नर्सरी से बिना मिट्टी की गेंद के भी सुरक्षित रूप से निकाला जा सकता है। वर्षा ऋतु में रोपाई करना अपेक्षाकृत कठिन एवं जोखिमपूर्ण होता है, क्योंकि पर्याप्त सावधानी न रखने पर पौधे स्थानांतरण के दौरान क्षतिग्रस्त होकर मर सकते हैं। सामान्यतः रोपण वर्गाकार पद्धति में 3–4 मीटर की दूरी पर किया जाता है। फालसा में उच्च घनत्व रोपण भी सफल रहता है। यदि 2 × 2 मीटर की दूरी पर वर्गाकार पद्धति अपनाई जाए तो प्रति हेक्टेयर लगभग 2025 पौधे लगाए जा सकते हैं। इसी प्रकार, 3 × 0.4 मीटर दूरी पर रोपण करने से लगभग 8,333 पौधे प्रति हेक्टेयर लगाए जा सकते हैं, जिससे प्रति इकाई क्षेत्रफल पर उत्पादन एवं लाभ में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त डबल-रो (Double row) प्रणाली भी अपनाई जाती है, जिसमें प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या बढ़ाकर कुल उपज में लगभग 20–30 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। इस विधि में दो पौधों को जोड़े के रूप में 0.6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है तथा इसके बाद 3 मीटर का अंतर देकर अगला जोड़ा लगाया जाता है, जिससे डबल-रो रोपण व्यवस्था बनती है।

**पोषक तत्व प्रबंधन**

फालसा प्रायः ऐसी मिट्टियों में उगाया जाता है जहाँ पोषक तत्वों की उपलब्धता कम होती है। इसलिए जिस खेत में फालसा की स्थापना करनी हो, वहाँ ग्वार या सैंजी जैसी ढकाव फसल (कवर क्रॉप) उगाना लाभकारी होता है। यह विधि मिट्टी की उर्वरता में सुधार करती है तथा उसमें पर्याप्त जैविक पदार्थ की पूर्ति करती है। स्थापित फालसा पौधों

को रोपण के बाद प्रति पौधा लगभग 10–15 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद देना चाहिए, जिससे बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त किए जा सकें। इसके साथ-साथ नाइट्रोजन का प्रयोग भी आवश्यक होता है, जिसे दो समान भागों में देना उपयुक्त रहता है—पहली मात्रा पुष्पन के समय तथा दूसरी मात्रा फल स्थापन के बाद। संतुलित पोषण के लिए प्रति हेक्टेयर लगभग 100 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस तथा 25 किग्रा पोटाश देने से फालसा की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। फालसा में जिंक और आयरन का प्रभाव विशेष रूप से बेरी के आकार एवं रस की मात्रा पर देखा गया है। पुष्पन से पूर्व तथा फल बनने के बाद $ZnSO_4$ @ 0.4% का पर्णीय छिड़काव करने से रस प्रतिशत बढ़ता है, जबकि फेरस सल्फेट @ 0.4% का अकेले या जिंक के साथ उपयोग करने से फलों का आकार बेहतर होता है।

**प्रशिक्षण और छँटाई**

फालसा में पौधों को झाड़ी स्वरूप बनाए रखने हेतु सामान्यतः प्रशिक्षण किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक मीटर ऊँचाई तक एकल तने के साथ हेड सिस्टम द्वारा भी प्रशिक्षण अपनाया जाता है। क्योंकि फालसा में फल वर्तमान मौसम की नई शाखाओं पर लगते हैं, इसलिए वार्षिक छँटाई एक अत्यंत आवश्यक क्रिया है, जो स्वस्थ नई टहनियों के विकास को प्रोत्साहित करती है तथा शीघ्र एवं अधिक फलन सुनिश्चित करती है। प्रत्येक वर्ष जनवरी से फरवरी के बीच पौधों को लगभग एक मीटर ऊँचाई तक काटने से नई शाखाओं की संख्या में वृद्धि होती है और उत्पादकता बढ़ती है। कुछ अनुसंधानों के अनुसार 75 सेमी ऊँचाई पर की गई छँटाई से अधिक उपज प्राप्त होती है। इसी प्रकार, भूमि सतह से 50 सेमी ऊँचाई पर छँटाई करने के साथ यदि 2% यूरिया का पर्णीय छिड़काव किया जाए तो बेहतर वनस्पतिक वृद्धि होती है और उपज में उल्लेखनीय सुधार देखा जाता है। नियमित छँटाई से न केवल फल की गुणवत्ता और उत्पादन में सुधार होता है, बल्कि पौधे का आकार भी नियंत्रित रहता है। साथ ही फलन क्षेत्र हाथ की पहुँच में होने से तुड़ाई की प्रक्रिया भी सरल हो जाती है।

**कीट एवं उनका प्रबंधन**

**1. छाल खाने वाली इल्ली**

यह फालसा का एक प्रमुख एवं गंभीर कीट है, जो पौधों को भारी क्षति पहुँचाता है। यह मुख्य शाखाओं तथा तनों में सुरंगें बनाकर अंदर की ओर भोजन करता है। इसकी सूंडियाँ शाखा और तने के ऊतकों को खाती हैं, जिससे जल एवं पोषक तत्वों का प्रवाह बाधित हो जाता है और पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है।

**नियंत्रण:**

दिसंबर–जनवरी में की जाने वाली वार्षिक छँटाई के पश्चात सुरंगों में मिट्टी का तेल अथवा पेट्रोल डालकर इंजेक्ट किया जाता है तथा छिद्रों को गीली मिट्टी से बंद कर दिया जाता है, जिससे कीट नष्ट हो जाता है

**2. प्लम हेयरी कैटरपिलर**

यह कीट फालसा की पत्तियों को गंभीर रूप से क्षति पहुँचाता है तथा उन्हें कंकाल जैसा बना देता है। इसकी पूर्ण विकसित सूंडियाँ लाल-भूरे रंग की होती हैं, जिनका सिर गहरे रंग का होता है। ये कीट पौधों पर ही प्यूपा अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं।

**नियंत्रण:**

a. अंडों के समूहों को एकत्र कर नष्ट करना चाहिए।
b. सक्रिय रूप से भोजन करने वाली छोटी सूंडियों को हाथ से हटाकर समाप्त करना चाहिए।
c. यह कीट प्रायः रात्रि के समय अधिक सक्रिय रहता है और अधिक प्रकोप की स्थिति में पूरा पौधा पत्तियों से विहीन हो सकता है।
d. रासायनिक नियंत्रण हेतु कार्बारिल 0.1% का छिड़काव, अथवा एंडोसल्फान 0.2% का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त डर्सबान 20 EC (क्लोरपाइरीफॉस) 200 मि.ली. को 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना भी प्रभावी रहता है।

**3. मिली बग:** मिली बग फालसा का एक प्रमुख हानिकारक कीट है, जो पौधों को भारी क्षति पहुँचाता है और विशेष रूप से फल बनने की प्रक्रिया को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। यह पौधों के कोमल भागों से रस चूसकर उनकी वृद्धि को रोक देता है, जिससे पुष्पन एवं फलन दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

**नियंत्रण:**

a. जून–जुलाई माह में खेत की जुताई कर *Clerodendrum inflortunatum* (अरंडी झाड़ी) जैसी खरपतवार एवं घासों को नष्ट करना चाहिए, जिससे कीट का प्रजनन स्थल समाप्त हो सके।

b. रासायनिक नियंत्रण हेतु 0.4% मोनोक्रोटोफॉस अथवा डायजिनॉन का छिड़काव प्रभावी रहता है।

**रोग एवं उनका प्रबंधन**

**1. ब्राउन स्पॉट / पत्ती धब्बा रोग**

फालसा में यह रोग कवक "सर्कोस्पोरा ग्रूविए" द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में पत्तियों की दोनों सतहों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं तथा वर्षा ऋतु के दौरान समय से पहले पत्तियों का झड़ना शुरू हो जाता है। प्रारंभिक अवस्था में इन धब्बों पर कवक का सफेद आवरण दिखाई देता है। बाद में कई छोटे धब्बे आपस में मिलकर बड़े स्पष्ट चकत्ते बना लेते हैं, जो पत्ती के बड़े भाग को ढक लेते हैं और प्रकाश संश्लेषण की क्षमता को कम कर देते हैं।

**नियंत्रण:**

- इंडोफिल M-45 अथवा 0.2% ब्लाइटॉक्स-50 का छिड़काव करना चाहिए।
- 2:2:250 बोर्डो मिश्रण का प्रयोग प्रभावी रहता है।
- रोगग्रस्त शाखाओं एवं विकृत पुष्पगुच्छों को काटकर नष्ट करना चाहिए, जिससे प्राथमिक संक्रमण स्रोत कम हो सके।

**2. फालसा का पिनस्पॉट / फिलोस्टिक्टा पत्ती धब्बा**

यह रोग कवक "फिलोस्टिक्टा ग्रूविए" के कारण होता है। अधिक नमी एवं आर्द्रता इसकी वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। रोग का प्राथमिक स्रोत पौध अवशेष होते हैं, जिनमें रोगजनक लंबे समय तक जीवित रह सकता है और बाद में स्वस्थ पौधों की पत्तियों को गंभीर रूप से संक्रमित कर देता है।

**लक्षण:**

- पत्तियों पर छोटे, भूरे से गहरे भूरे रंग के, गोल अथवा अनियमित आकार के पिनस्पॉट जैसे धब्बे बनते हैं।
- ये धब्बे सामान्यतः अक्टूबर–नवंबर में अधिक दिखाई देते हैं, किंतु वृद्धि अवधि में किसी भी समय प्रकट हो सकते हैं।

**नियंत्रण:**

- जैसे ही प्रारंभिक लक्षण दिखाई दें, 2:2:250 बोर्डो मिश्रण या 0.3% डाइथेन Z-78 का छिड़काव करना चाहिए।